International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 397-401

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 397-401
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-03-2017
Accepted: 07-04-2017

राज किशोर आर्य
शोधच्छात्र, जे.एन. यू. दिल्ली

Correspondence
राज किशोर आर्य
शोधच्छात्र, जे.एन. यू. दिल्ली

षड्दर्शनसमुच्चय में द्रव्य का स्वरूप : एक अनुशीलन

राज किशोर आर्य

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा का विकास वैदिक काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त ज़ारी है । सातवीं-आठवीं शताब्दी के निकट दार्शनिक शाखाओं के विपुल साहित्य की उपलब्धता होने के कारण आचार्यों को सभी शाखाओं का परिचय एक ही ग्रन्थ में उपलब्ध कराने की आवश्यकता अनुभव हुई, फलस्वरूप दार्शनिक सङ्ग्रह ग्रन्थों की रचना होने लगी । सूत्र तथा भाष्य में विस्तार से निर्दिष्ट पदार्थों का संक्षेप में निबन्धन "सङ्ग्रह" कहलाता है [1] । कतिपय दार्शनिक सङ्ग्रह ग्रन्थों का नामोल्लेख इस प्रकार है –

1. षड्दर्शनसमुच्चय – जैन विद्वान् हरिभद्रसूरि (आठवीं शताब्दी)
2. सर्वदर्शनसङ्ग्रह - माधवाचार्य (तेरहवीं शताब्दी)
3. सर्वदर्शनकौमुदी – माधव सरस्वती (चौदहवीं शताब्दी)
4. षड्दर्शननिर्णय – मेरुतुङ्ग (चौदहवीं शताब्दी उत्तरार्ध) इत्यादि ।

भारतीय दर्शन में प्रथम उपलब्ध संग्रह ग्रन्थ आचार्य हरिभद्रसूरि का है । जिसमें बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक, मीमांसा, चार्वाक दर्शन का वर्णन प्राप्त होता है । हरिभद्र कृत षड्दर्शनसमुच्चय में वैशेषिक दर्शन का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है । अतः इस शोध पत्र में वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित पदार्थों में प्रथम पदार्थ द्रव्य का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है ।

षड्दर्शनसमुच्चय में पदार्थ - आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय ये छः पदार्थ स्वीकार किये गये हैं । [2]

षड्दर्शनसमुच्चय में द्रव्य – सप्त पदार्थों में प्रथम पदार्थ द्रव्य है । द्रव्य का लक्षण सूत्रकार ने इस प्रकार दिया है – जिसमें कर्म व गुण रहते हैं तथा जो समवायिकारण है, वह द्रव्य है । [3] छः तत्त्वों में द्रव्य तत्त्व नौ प्रकार का है – पृथ्वी, जल. तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन । [4] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा अत्यन्त सङ्क्षिप्त रूप में दर्शाई गई है । परन्तु उन पंक्तियों में कणाद कृत वैशेषिक-सूत्रों की

अवधारणा ही प्रतिबिम्बित हो रही है। अतः प्रस्तुत शोध-पत्र में कणादीय सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में ही षड्दर्शनसमुच्चय की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

पृथिवी – नौ द्रव्यों में प्रथम द्रव्य पृथिवी है। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण रहते हैं, वह पृथिवी है। [5] चतुर्दश गुणों से युक्त पृथिवी के दो भेद हैं – नित्य और अनित्य। अत्यन्त अणु परिमाण वाली पृथिवी नित्य तथा कार्यरूपा पृथिवी अनित्य है। यहाँ नित्य से तात्पर्य है, जो तीनों कालों में सत् तथा कारणहीन हो। [6] अनित्य पृथिवी कार्यरूपा होती है। अनित्य पृथिवी वह है जिसका निर्माण परमाणु-द्वय-संयोग से होता है। [7] इसके अन्तर्गत द्वयणुक से लेकर समस्त पार्थिव तत्त्व तक का सन्निवेश होता है। इन द्वयणुक आदि का उत्पाद और विनाश दोनों होता है, इसलिए ये अनित्य कहलाते हैं। [8] इन्हें कार्य अथवा जन्य भी कहते हैं। कार्यरूपा पृथिवी के पुनः तीन भेद हैं [9]- शरीर, इन्द्रिय, विषय। आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में पृथिवी उपर्युक्त वर्णित ही प्रतीत होती है।

पार्थिव शरीर – भूलोकस्थ शरीर पार्थिव-शरीर हैं। वैशेषिक-दर्शन की मान्यता है कि यह शरीर पाञ्चभौतिक नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष-गोचर पृथिवी, जल, तेजस् प्रत्यक्षागोचर वायु और आकाश का संयोग शरीर निर्माण में माना जाय तो शरीर का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष द्रव्यों का संयोग प्रत्यक्ष-गोचर नहीं हो सकता है अतएव यह शरीर पाञ्चभौतिक नहीं माना जा सकता हैं। [10] पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पाँचों द्रव्य हैं इनका मिलना प्रतिषिद्ध है। [11] यह शरीर त्रैभौतिक भी नहीं है। [12] शशिप्रभा कुमार इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि 'शरीर से आत्मा के निकल जाने पर अन्य किसी भूत का संयोग नहीं रहता। शुष्क शरीर में केवल पृथिवी के गन्ध आदि गुण ही उपलब्ध होते हैं। अतः यही सिद्धान्त समीचीन है कि मानुषादि देह पार्थिव हैं, पाञ्चभौतिक नहीं'। [13]

यह पार्थिव शरीर दो प्रकार का है – योनिज और अयोनिज। [14] शुक्र शोणित के संयोग से उत्पन्न शरीर योनिज कहलाता है। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि। जिसका निर्माण शुक्र शोणित से नहीं होता है वह अयोनिज शरीर कहलाता है। अयोनिज शरीर के निर्माण में परमाणुओं में क्रिया धर्म के कारण होती है। [15] यह देवताओं का होता है। सृष्टि के आदि में भी ब्रह्मा आदि के शरीर की रचना इसमें कारण है, क्योंकि उस समय उनके माता-पिता का अस्तित्व नहीं था। [16] वेद के प्रामाण्य से भी अयोनिज शरीर सिद्ध है। [17]

पार्थिव इन्द्रिय – वैशेषिक दर्शन के अनुसार घ्राणेन्द्रिय पार्थिव है। घ्राणेन्द्रिय के द्वारा ही गन्ध का ग्रहण होता है। पार्थिव इन्द्रिय घ्राण में केवल पार्थिव अवयवों का ही प्राधान्य है, अन्य भूतों का सम्पर्क गौण है। [18]

पार्थिव विषय - शरीर और इन्द्रिय से भिन्न पृथिवी के जितने भेदोपभेद हैं सब पार्थिव विषय हैं। [19] द्वयणुक से लेकर ब्रह्माण्ड-पर्यन्त पदार्थ विषय है।

जल – सूत्रकार कणाद ने जल द्रव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है कि – जिसमें रूप, रस, स्पर्श, द्रवत्व तथा स्नेह गुण रहते हैं वह जल है। [20] जल भी नित्य और अनित्य भेद से दो प्रकार का है। आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में जल उपर्युक्त वर्णित ही प्रतीत होता है।

तेज – वैशेषिक दर्शन में तेज को एक द्रव्य माना गया है। सूत्रकार महर्षि कणाद ने तेज का लक्षण करते हुए कहा है कि जिस द्रव्य में रूप अर्थात् भास्वर शुक्ल रूप और स्पर्श अर्थात् उष्णस्पर्श हो वही तेज है। [21] वैशेषिक दर्शन में तेज दो प्रकार का माना गया हैं – नित्य, अनित्य। [22] नित्य तेज परमाणुरूप है, अनित्य कार्यरूप है। कार्यरूप तेज पुनः शरीर, इन्द्रिय, विषय भेद से तीन प्रकार का है। [23] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में तेज उपर्युक्त वर्णित ही प्रतीत होता है।

तैजस शरीर – तैजस शरीर अयोनिज होता है। पं. आनन्द झा के अनुसार तैजस शरीर यद्यपि इस लोक में नहीं पाया जाता तथापि तैजस परलोक में इसका होना वैसे ही स्वाभाविक है जैसे इस भूलोक पर रहने वाले प्राणियों के शरीर भौम अर्थात् पार्थिव होते हैं। [24] वैशेषिक दर्शन में पदार्थ-निरूपण नामक पुस्तक में प्रो. शशि प्रभा कुमार ने कहा है कि 'वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार तैजस शरीर आदित्य लोक में पाये जाते है यह सर्वथा प्रतिकूल है, चूँकि

अब यह प्रमाणित हो चुका है कि सूर्य में इतना प्रचण्ड ताप है कि वहाँ किसी जीव धारी शरीर का होना सम्भव ही नहीं है।' [25]

तैजस इन्द्रिय – तेज का ग्रहण चक्षुरिन्द्रिय से होता है।

तैजस विषय – वैशेषिक सूत्रों में स्पष्ट रूप से 'तैजस विषय' में कुछ नहीं कहा गया है लेकिन प्रशस्तपादभाष्य में विषय रूप में तेज द्रव्य चतुर्विध माना गया है – भौम, दिव्य, उदर्य तथा आकरज। [26]

वायु - वायु को अनित्य द्रव्यों की परम्परा में चतुर्थ एवं अन्तिम द्रव्य माना गया है। वायु द्रव्य की सिद्धि में स्पर्श गुण [27] को कारण माना गया है। [28] वायु का यह स्पर्श अपाकज एवं अनुष्णाशीत होता है। वायु भी नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। [29] वायु किसी द्रव्य से उत्पन्न न होने के कारण भी नित्य है। [30] परमाणु रूप वायु नित्य है। कार्य रूप वायु अनित्य होती है। कार्य रूप वायु के पुनः शरीर, इन्द्रिय, विषय तीन भेद किये गये है। [31] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में वायु उपर्युक्त वर्णित ही प्रतीत होता है।

वायवीय शरीर – पार्थिव शरीर को छोड़कर सभी शरीर अयोनिज होते हैं। वायव्य शरीर भी अयोनिज है।

वायवीय इन्द्रिय – शरीर के त्वक् स्पर्श को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय ही वायवीय इन्द्रिय कहलाती हैं। [32]
वायवीय विषय प्रशस्तपाद ने उपलभ्यमान स्पर्श के अधिष्ठान के स्वरूप को वायु कहा है। [33]

आकाश – वैशेषिक दर्शन के द्रव्य के अन्तर्गत आकाश पाँचवें स्थान पर आता हैं। यह नित्य, विभु, एक है। सम्पूर्ण क्रियाओं का यह आश्रय है। वैशेषिकाचार्यों ने इसे शब्द गुण का आश्रय कहा है। सदानन्द भादुड़ी के अनुसार शब्द गुण का आश्रय होने के अतिरिक्त वैशेषिक दर्शन में आकाश का न तो कोई स्वरूप है और न उपयोगिता, अतः वस्तु सत्ता के आयोजन में आकाश का कार्य क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। [34] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में आकाश उपर्युक्त वर्णित ही प्रतीत होता है। महर्षि कणाद ने द्रव्यों में होने वाले निष्क्रमण और प्रवेशन के आधार पर आकाश की सिद्धि की है। [35] पृथिवी, जल आदि कार्य द्रव्य में जो रूपादि विशेष गुण होते हैं, वे अपने परमाणु आदि कारण के गुण रूपादिकों से उत्पन्न हुए उनके अनुसार होते हैं। शब्द गुण कारण पूर्वक हो ऐसा कोई कार्य उपलब्ध नहीं होता है अतः पृथिव्यादि का गुण नहीं हो सकता है। [36] पृथिवी, जल, तेज, वायु, काल, दिक् तथा मन के गुण हैं वे सब श्रावण-प्रत्यक्ष गोचर नहीं होते, परन्तु शब्द गुण श्रावण प्रत्यक्ष का विषय है, अतः उपर्युक्त वैधर्म्य के कारण शब्द गुण पृथिव्यादि अष्ट द्रव्यों का विषय नहीं हो सकता हैं। [37] शब्द गुण आकाश में रहता है इसकी सिद्धि परिशेषानुमान से होती है। [38] इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि आकाश एक पृथक् द्रव्य है तथा शब्द गुण उसका हेतु है।

काल – सामान्यतः काल का अर्थ समय से लिया जाता है। आङ्गल भाषा में इसे Time कहा जाता है। उमेश मिश्र ने काल को परिभाषित करते हुए कहा है कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय रूपी क्रियाओं के पीछे काल विद्यमान रहता है, इसलिए वैशेषिक दर्शन में काल को प्रत्येक क्रिया की अनिवार्य प्राग्दशा के रूप में स्वीकार किया गया है। [39] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में काल प्रस्तुत रूप में ही वर्णित प्रतीत होता है।
समीपस्थ पदार्थ में तथा कनिष्ठ अवस्था वाले मनुष्यों में यह अपर है, दूर के पदार्थ में ज्येष्ठ अवस्था वाले में यह पर है। इस ज्ञान से इसी प्रकार यह एक काल में हुआ, यह विलम्ब से हुआ, यह शीघ्र हुआ, इस प्रकार की प्रतीतियों का असमवायिकारण ही काल है। [40] नित्यों में न होने तथा अनित्यों में होने से स्पष्ट है कि जन्य कार्यों का कारण ही काल है। [41]

दिशा – द्रव्य परम्परा का प्रकृत द्रव्य 'दिक्' नाम से ज्ञात है। इस दिक् द्रव्य के कारण हमें दूर अथवा समीपार्थक ज्ञान होता है। सूत्रकार कणाद के अनुसार दो समकालीन वस्तुओं में आगे पीछे या दूर निकट होने का ज्ञान हमें दिशा से ही प्राप्त होता है। [42] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में दिक् प्रस्तुत रूप में ही वर्णित प्रतीत होता है।

आत्मा - भारतीय दर्शन परम्परा में आत्मा की सत्ता स्वीकार की गई है । वैशेषिक दर्शन में इसे नित्य द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है । इस स्वतन्त्र द्रव्य को चैतन्यगुणयुक्त [43] 'अहं' प्रत्यय का विषय माना गया है । वैशेषिक सूत्रकार के अनुसार इन्द्रिय और उनके ग्राह्य विषयों की प्रसिद्धि ही इन्द्रिय एवं उनके ग्राह्य विषयों से भिन्न आत्मा की सिद्धि में हेतु है । [44] महर्षि कणाद ने आत्मा की अनुमिति के लिए कुछ साधक लिङ्ग दिये हैं – प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति, इन्द्रियान्तर विकार, सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष और प्रयत्न । साथ ही ऐसा भी निर्देश किया है कि आत्म साधक अनुमान दृढ़ता के लिए किया जाता है । [45] वैशेषिक दर्शन में आत्मा के चतुर्दश गुण बताये गये हैं – बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग । [46] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में आत्मा प्रस्तुत रूप में ही वर्णित प्रतीत होता है ।मन - वैशेषिक दर्शन का अन्तिम द्रव्य मन है । पंकज मिश्र ने इसे अभौतिक द्रव्य कहा है । [47] अथल्ये एवं बोडास के अनुसार मन अन्तर्जगत् एवं बाह्यजगत् का समन्वय कराता है । **[48]** महर्षि कणाद मन का लक्षण करते हुए कहते हैं कि आत्मा, इन्द्रिय तथा अर्थ का सन्निकर्ष होने पर ज्ञान का भाव एवं अभाव होना ज्ञान का लक्षण है । [49] आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा में मन प्रस्तुत रूप में ही वर्णित प्रतीत होता है ।

निष्कर्ष – आचार्य हरिभद्र कृत षड्दर्शनसमुच्चय में द्रव्य के स्वरूप का प्रतिपादन बड़े ही विशिष्टता के साथ किया गया है । षड्दर्शनसमुच्चय में समस्त भौतिक जगत् का निर्माण द्रव्यों से हुआ प्रतीत होता है । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश नामक पञ्चभूतों से ही सृष्टि की निर्माण प्रक्रिया स्वीकार की गयी है । भारतीय दर्शनों में वैशेषिक दर्शन यह स्वीकार करता है कि शरीर के निर्माण में प्रमुखता पृथिवी नामक तत्त्व की है, क्योंकि जब मृत्यु हो जाती है तब शरीर से सबसे पहले गन्ध उत्पन्न होती है, अतः गन्ध नामक गुण पृथिवी का विशेष गुण है अतः शरीर निर्माण में पृथिवी का अंश अधिक प्रतीत होता है । अन्य चार भूतों की उपस्थिति भी शरीर में रहती है । वैशेषिक सूत्रकार कणाद मुनि का भी यही मत प्रतीत होता है । सार रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार वैशेषिक दर्शन में द्रव्य की अवधारणा प्रस्तुत रूप में ही वर्णित प्रतीत होती है ।

सन्दर्भ

1. विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः ।
   निबन्धो यः समासेन सङ्ग्रहं तं विदुर्बुधाः॥
2. द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं च चतुर्थकम् ।
   विशेषसमवायौ च तत्त्वषट्कं हि तन्मते ॥
   षड्दर्शनसमुच्चय, कारिका, ५९
3. क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् । वै.सू. १/१/१५
4. तत्र द्रव्यं नवधा भूजलतेजोऽनिलान्तरिक्षाणि ।
   कालदिगात्ममनांसि च गुणः पुनः पञ्चविंशतिधा ।
   षड्दर्शनसमुच्चय, कारिका, ६१
5. रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी । वै.सू. २/१/१
6. सदकारणवन्नित्यम् । वै.सू. ४/१/१
7. वैशेषिक दर्शन: एक अध्ययन, पृ. २८
8. वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप, पृ. ९८, मिश्र पंकज, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, १९९८
9. तत्पुनः पृथिव्यादि-कार्य-द्रव्यं त्रिविधम्, शरीरेन्द्रिय-विषय-संज्ञकम् । वै.सू. ४/२/१
10. प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षाणां सयोगस्याऽप्रत्यक्षत्वात् पञ्चात्मकं न विद्यते । वै.सू. ४/२/२
11. द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम् । वै.सू. ८/२/४
12. गुणान्तराप्रादुर्भावात् न त्र्यात्मकम् । वै.सू. ४/२/३
13. कुमार, शशिप्रभा, वैशेषिक दर्शन-परिशीलन, "वैशेषिक तत्त्वमीमांसा में पञ्चमहाभूत-परिकल्पना", पृ. ४२, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २०१०
14. तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च । वै.सू. ४/२/५
15. धर्मविशेषाच्च । वै.सू. ४/२/७
16. संज्ञाया आदित्वात् । वै.सू. ४/२/९
17. वेदलिङ्गाच्च । वै.सू. ४/२/११
18. भूयस्त्वाद् गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः । वै.सू. ८/२/५
19. 'विषिणोति बध्नाति इन्द्रियादिति विषयः' वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप, पृ, १०३,
20. रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः । वै. सू. २/१/२
21. तेजो रूपस्पर्शवत् । वै.सू. २/१/३
22. सदकारणवन्नित्यम् । वै.सू. ४/२/१
23. तत्पुनः पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् । वै.सू. ४/२/१

24. पदार्थशास्त्र, पृ. ११ झा आनन्द, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, १९६५
25. वैशेषिक दर्शन में पदार्थ-निरूपण, पृ. १०१
26. प्र. पा.भा.पृ. २३
27. स्पर्शवान् वायुः । वै.सू. २/१/४
28. स्पर्शश्च वायोः । वै.सू. २/१/९
29. सदकारणवन्नित्यम् । वै.सू. ४/१/१
30. अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमुक्तम् । वै.सू. ४/१/१३
31. तत्पुनः पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् । वै.सू. ४/२/१
32. वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप, पृ. १३०
33. विषयस्तूपलभ्यमानस्पर्शाधिष्ठानभूतः । प्र. पा.भा.पृ. ५६
34. The only function of Akasa on the Vaisesika view , is to afford a substantial basis for the phenomenon of sound. The apart played by Akasa in the scheme of reality is therefore extremely limited. Bhaduri Sadananda, Studies in nyaya-vaisesika metaphysics, p. 165-166 , bhandarkar oriental research institute, poona, 1975
35. निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् । वै.सू. २/१/१०
36. कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः । वै.सू. २/१/२४
37. परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः । वै.सू. २/१/२६
38. परिशेषाल्लिंगमाकाशस्य । वै.सू. २/१/२७
39. It is for this reason that has been regarded as a necessary precondition, in nyaya-vaisesika of every kind of action. Conception of Matter according to Nyaya Vaisesika , p.106 , Mishra Umesh, Alahabad, 1936
40. अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि । वै.सू. २/२/६
41. नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणं कालाख्येति । वै.सू. २/२/९
42. इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् । वै.सू. २/२/१०
43. चैतन्य से तात्पर्य है कि जो इन्द्रियों के प्रवर्तक विषयों का उपभोक्ता और शरीर से भिन्न है । वही, पृ. १६०
44. इन्द्रियार्थाप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः । वै.सू. ३/१/२
45. दृष्ट आत्मनि लिङ्गे एक एव दृढ़त्वात् प्रत्यक्षवत् प्रत्ययः । वै .सू. ३/२/११
46. .....सुखदुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्नाश्च आत्मनो लिङ्गानि । वै.सू. ३/२/४ इसी सूत्र से आत्मा के गुणों की सिद्धि 'वैशेषिक दर्शन एक अध्ययन' में भी की गई है ।
47. वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप, पृ. १७४
48. Even taking these two functions of the mind, and entirely subordinate, if not actually deny, its character asthe instrument of thinking. Nots on TS P. 145
49. आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् । वै.सू. ३/२/१